National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
**NJHSR 2025;** 1(61): 260-263
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

**डॉ० प्रीति सिरौटीय**
सहा० आचार्य, संस्कृत विभाग,
नेहरू महाविद्यालय, ललितपुर,
उत्तर प्रदेश, भारत

**Correspondence:**
**डॉ० प्रीति सिरौटीय**
सहा० आचार्य, संस्कृत विभाग,
नेहरू महाविद्यालय, ललितपुर,
उत्तर प्रदेश, भारत

# योगसूत्र और विशुद्धिमग्ग का तुलनात्मक अध्ययन

**डॉ० प्रीति सिरौटीय**

**सार (Abstract)**

भारतीय आध्यात्मिक एवं दार्शनिक ज्ञान परम्परा में दुःखनिवृत्ति, चित्त-शुद्धि तथा परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु विविध साधना-पथ विकसित हुए हैं। महर्षि पतञ्जलि विरचित *योगसूत्र* और बुद्धघोषाचार्य रचित *विशुद्धिमग्ग* ऐसे ही दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं, जो क्रमशः योग-दर्शन और थेरवाद बौद्ध परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। यद्यपि दोनों ग्रन्थ भिन्न दार्शनिक पृष्ठभूमि—सांख्य-द्वैत और बौद्ध अनात्मवाद—पर आधारित हैं, तथापि साधना-पद्धति, नैतिक अनुशासन, ध्यान-प्रणालियों तथा चित्त-विश्लेषण में दोनों ग्रंथों में गहन साम्य दृष्टिगोचर है। प्रस्तुत शोधपत्र में इन दोनों ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन विशेष रूप से समाधि-भेद, दार्शनिक विमर्श, चित्त-सिद्धान्त, क्लेश-संकल्पना तथा साध्य (कैवल्य एवं निर्वाण) के संदर्भ में किया गया है। पालि एवं संस्कृत मूल उद्धरणों के साथ हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करते हुए यूजीसी मानक के अनुसार फुटनोट एवं संदर्भ-सूची दी गई है।

**मुख्य शब्द:** योगसूत्र, विशुद्धिमग्ग, समाधि, कैवल्य, निर्वाण, चित्त, विपश्यना

**भूमिका-**

भारतीय दर्शन की परम्परा में साधना का केन्द्रीय उद्देश्य मानव जीवन के मूल दुःख का निराकरण है। वैदिक-उपनिषदिक परम्परा में जहाँ आत्मा और ब्रह्म के एक्य पर बल दिया गया, वहीं श्रमण-परम्परा में दुःख-निरोध का व्यावहारिक मार्ग प्रतिपादित हुआ। दुःख-निरोध के पश्चात ही पुरुष को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है, और तभी आत्मा और ब्राम्ह का एक्य सम्भव है। योगसूत्र और विशुद्धिमग्ग इन दोनों प्रवृत्तियों के आधिकारिक परिपक्व ग्रन्थ हैं।

पतञ्जलि योग को परिभाषित करते हुए कहते हैं— > **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**।[1] अर्थात चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।

बुद्धघोषाचार्य ने विशुद्धिमग्ग में भी चित्त-शुद्धि को साधना का केन्द्र माना गया है— **"सीलविसुद्धिया चित्तविसुद्धि, चित्तविसुद्धिया दिट्ठिविसुद्धि"**[2] अर्थात शील की विशुद्धि से चित्त की विशुद्धि और चित्त की विशुद्धि से दृष्टि की विशुद्धि होती है।

इन दोनों कथनों से स्पष्ट है कि साधना का केन्द्र चित्त है, यद्यपि उसके दार्शनिक अर्थ और अंतिम लक्ष्य में भिन्नता है।

ग्रन्थ परिचय एवं एतिहासिक पृष्टभूमि

योगसूत्र

महर्षि पतंजलि द्वारा विरचित योगसूत्र पादों में विभक्त है— समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद। इसका दार्शनिक आधार सांख्य-दर्शन है, जिसमें पुरुष और प्रकृति का द्वैत स्वीकार किया गया है। पुरुष नित्य, शुद्ध, चेतन और साक्षी है, इसके विपरीत प्रकृति जड़, परिवर्तनशील और

त्रिगुणात्मक है। **तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।**[3] अर्थात उस समय द्रष्टा (पुरुष) अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है।

विशुद्धिमग्ग

बुद्धघोषाचार्य द्वारा रचित विशुद्धिमग्ग पालि भाषा का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसका अर्थ है—'विशुद्धि का मार्ग' अथवा 'शुद्धता का मार्ग'। यह त्रिपिटक की व्याख्यात्मक परम्परा का शिखर-ग्रन्थ माना जाता है। इसमें साधना के क्रम को **सात विशुद्धियों सत्त ) (विशुद्धि** के रूप में व्यवस्थित किया गया है- शीलविशुद्धि-, चित्त-विशुद्धि, दिट्ठिविशुद्धि-, कङ्खावितरणविशुद्धि-, मग्गामग्ग-विशुद्धि-ञाणदस्सन, पटिपदाविशुद्धि-ञाणदस्सन-, ञाणदस्सन-विशुद्धि। ये सातों विशुद्धियाँ साधक को शील से लेकर प्रज्ञा और अंततः निर्वाण के मार्ग पर ले जाती हैं।

दार्शनिक आधार का तुलनात्मक अध्ययन

आत्मा और अनात्म

योगसूत्र आत्मा (पुरुष) को स्वीकार करता है— **द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः।**[4] अर्थात द्रष्टा केवल देखने की शक्ति है; वह शुद्ध है, पर बुद्धि-वृत्तियों के साथ प्रतीत होता है।

विशुद्धिमग्ग बौद्ध अनात्मवाद का समर्थन करता है— **"नत्थि अत्ता, नत्थि पुद्गलो"** [5] अर्थात न आत्मा है, न स्थायी पुरुष।

यहाँ दार्शनिक विरोध स्पष्ट देखा जा सकता है— जहां एक ओर योगसूत्र में मुक्ति आत्मा की स्वतंत्र स्थिति को बताता है, वहीं बौद्ध परम्परा में किसी नित्य आत्मा की स्वीकृति नहीं।

कर्म और पुनर्जन्म

योगसूत्र में कर्माशय की संकल्पना है— **कर्माशयः क्लेशमूलः।**[6] अर्थात कर्मों का वह समुच्चय जो शुभ और अशुभ कर्मों से उत्पन्न होता है और जो भविष्य में **जाति (जन्म), आयु (काल-जीवन) तथा भोग** के रूप में फल देता है ,क्लेशों की उत्पत्ति का कारण है।

विशुद्धिमग्ग में कर्म को चित्त-चेतना की निरन्तर धारा से जोड़ा गया है, जहाँ कोई स्थायी कर्ता नहीं, केवल कारण-कार्य सम्बन्ध है- **चेतना अहं भिक्खवे कम्मं वदामि।** अर्थात कोई आत्मा कर्म नहीं करती अपितु चित्त में उत्पन्न होने वाली चेतना ही कर्म है। प्रत्येक चित्त एक क्षण में उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है परंतु नाश के साथ ही अगला चित्त उत्पन्न होता है।

साधना पद्धति: अष्टांग योग और त्रिशिक्षा

**अष्टांग योग**

**यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टा-वङ्गानि।**[7] अर्थात यम-नियम नैतिक शुद्धि, आसन-प्राणायाम शारीरिक-मानसिक स्थिरता, तथा धारणा-ध्यान-समाधि चित्त की एकाग्रता का विकास करते हैं जो शारीरिक स्वास्थ्य से लेकर आत्म-साक्षात्कार (समाधि) तक का मार्ग प्रशस्त करते हैं। योग सूत्र का मुख्य उद्देश्य "चित्तवृत्ति निरोध" (मन की चंचलता को रोकना) है। यह मानसिक शांति, एकाग्रता और तनाव प्रबंधन के लिए व्यावहारिक निर्देश देता है। ये अष्टांग नकारात्मक विचारों को नियंत्रित करने और भावनात्मक संतुलन बनाए रखने के लिए उपयोगी है। पतंजलि के अनुसार, आसन केवल शरीर को मोड़ना नहीं है, अपितु **"स्थिरसुखमासनम्"** है—अर्थात ऐसी मुद्रा जो स्थिर और सुखद हो ताकि मन अंतर्मुखी हो सके।

त्रिशिक्षा

विशुद्धिमग्ग में बौद्ध साधना का संपूर्ण ढाँचा तीन महत्त्वपूर्ण स्तम्भों में समाहित किया गया है — 1. **शील** (नैतिक अनुशासन) 2. **समाधि** (चित्त की एकाग्रता) 3. **प्रज्ञा** (यथार्थ-बोध)। इन्हें बौद्ध परम्परा में **त्रिशिक्षा (तीस्सिक्खा)** कहा गया। ये तीनों अलग-अलग नहीं, बल्कि एक सजीव साधना-प्रवाह हैं। इन तीनों की पूर्णता से ही चित्त शुद्ध होता है, सत्य का साक्षात्कार होता है और निर्वाण की प्राप्ति होती है।

समाधि-भेद का तुलनात्मक अध्ययन

योगसूत्र में समाधि

योगसूत्र में समाधि को सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात दो मुख्य प्रकारों से विभक्त किया गया है— **वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः।**[8] अर्थात सम्प्रज्ञात समाधि में वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता के भेद हैं। असम्प्रज्ञात समाधि में सभी वृत्तियों का निरोध होता है। यह सूत्र समाधि की आन्तरिक संरचना को स्पष्ट करता है। यह स्पष्ट करता है कि योग में चेतना स्थूल विषय → सूक्ष्म तत्त्व → आनन्द → अहंभाव के क्रम से आगे बढ़ती है, और अंततः अहं का भी लय होकर **कैवल्य** की प्राप्ति होती है।

विशुद्धिमग्ग में समाधि

विशुद्धिमग्ग में समाधि को उपाचार-समाधि और अप्पना-समाधि में विभक्त किया गया है। अप्पना-समाधि से चार रूप-झान और चार अरूप-झान का वर्णन मिलता है— ***"पठमं झानं... चतुत्थं झानं"***[9] ये झान **समाधि-भावना** की क्रमिक, सूक्ष्म अवस्थाएँ हैं, जिनमें चित्त क्रमशः स्थूल से अत्यन्त सूक्ष्म शान्ति की ओर अग्रसर होता है। झान कर्म का क्षय नहीं परंतु विपश्यना के लिए चित्त को समर्थ बनाते है, और इसी झानयुक्त चित्त से ही प्रज्ञा (विपश्यना) का विकास होता है।

**तुलनात्मक विवेचन**

योगसूत्र की असम्प्रज्ञात समाधि और विशुद्धिमग्ग की निरोध-समापत्ति में व्यावहारिक साम्य दृष्टिगोचर होता है, यद्यपि

दार्शनिक व्याख्या भिन्न है। दोनों अवस्थाओं में मानसिक क्रियाएं पूरी तरह रुक जाती हैं। योगसूत्र के अनुसार इसमें सभी 'चित्त-वृत्तियों' का निरोध हो जाता है (योगसूत्र 1.18), जबकि निरोध-समापत्ति में 'संज्ञा' (perception) और 'वेदाना' (feeling) का पूर्णतः लय हो जाता है। व्यावहारिक रूप में, इन दोनों अवस्थाओं में साधक का बाहरी संसार से संपर्क टूट जाता है। शरीर पूरी तरह स्थिर और अचल हो जाता है। न तो कोई शब्द सुनाई देता है और न ही स्पर्श का अनुभव होता है। असम्प्रज्ञात समाधि में पूर्व के सभी 'व्युत्थान संस्कार' दब जाते हैं और केवल 'निरोध संस्कार' शेष रहते हैं। इसके विपरीत निरोध-समापत्ति की अवस्था में केवल 'अनागामी' या 'अरहंत' ही प्राप्त कर सकते हैं, जहाँ अविद्या और तृष्णा के सूक्ष्म संस्कार सक्रिय नहीं रहते। दोनों समाधियों में समय का ज्ञान समाप्त हो जाता है। साधक घंटों या दिनों तक इस अवस्था में रह सकता है, लेकिन बाहर आने पर उसे ऐसा प्रतीत होता है जैसे कुछ ही क्षण बीते हों। व्यावहारिक दृष्टि से, दोनों ही स्थितियों में श्वास-प्रश्वास (breathing) अत्यंत सूक्ष्म या कुंभक की स्थिति में पहुँच जाता है। शरीर की चयापचय क्रियाएं (metabolism) न्यूनतम स्तर पर आ जाती हैं, जिससे शरीर लंबे समय तक बिना भोजन-पानी के सुरक्षित रहता है। अतः कहा जा सकता है कि जहाँ असम्प्रज्ञात समाधि 'पुरुष' (आत्मा) के स्वरूप में अवस्थित होने का मार्ग है, वहीं निरोध-समापत्ति बौद्ध दर्शन के 'शून्यता' और 'निर्वाण' के व्यावहारिक अनुभव का उच्चतम बिंदु है।

विपश्यना, प्रज्ञा और दार्शनिक विमर्श

योगसूत्र में प्रज्ञा को विवेकख्याति कहा गया है— **विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः।**[10] अर्थात जब साधक लगातार अभ्यास (ताप तथा ध्यान) के माध्यम से यह जान लेता है कि मैं" शरीर (पुरुष), मन या प्रकृति नहीं हूँ, अपितु इनसे भिन्न, शुद्ध और शाश्वत हूँ", तो यही अटल ज्ञान अज्ञानता के बीज को नष्ट कर देता है, जिससे सभी दुख समाप्त हो जाते हैं और कैवल्य की प्राप्ति होती है। यह ज्ञान ही मुक्ति का मार्ग है।

विशुद्धिमग्ग में विपश्यना द्वारा अनित्यता, दुःख और अनात्मा का बोध होता है— **"सब्बे संखारा अनिच्चा"** [11] अर्थात सभी संस्कार अनित्य हैं। संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो सदा एक जैसी रहे। चाहे वह हमारी देह हो, हमारी प्रसन्नता हों या दुख, सब कुछ परिवर्तनशील है। भगवान बुद्ध ने बताया कि दुखों का मुख्य कारण इन अनित्य (नाशवान)वस्तुओं से आसक्ति अथवा उनसे मोह करना है। जब हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि परिवर्तन ही जीवन का नियम है, तब हम मानसिक शांति और मुक्ति की ओर बढ़ते हैं।

क्लेश-संकल्पना

योगसूत्र के क्लेश

**अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः।**[12] अर्थात अविद्या (अज्ञान), अस्मिता (अहंकार), राग (आसक्ति), द्वेष और (घृणा) (मृत्यु का भय) अभिनिवेश - ये पाँच मुख्य क्लेश दुःख या ) हैं जो मनुष्य को संसार चक्र में फँसाए रखते हैं (मानसिक पीड़ाएँ, जैसा कि पतंजलि योग सूत्र के दूसरे अध्याय के तीसरे सूत्र में बताया गया है। ये पाँचों मिलकर दुखों के मूल कारण बनते हैं और इनका नाश योग के अभ्यास से किया जाता है।

**विशुद्धिमग्ग में क्लेश**

बौद्ध परम्परा में क्लेशों को लोभ, द्वेष और मोह के रूप में समझाया गया है। विशुद्धिमग्ग के अनुसार, क्लेश ही दुखों का मूल कारण हैं। जब तक इन क्लेशों को 'विपस्सना' (Vipassana) ध्यान के माध्यम से पूरी तरह समाप्त नहीं किया जाता, तब तक व्यक्ति जन्म और मरण के चक्र से मुक्त नहीं हो सकता (संसार)।

साध्य: कैवल्य और निर्वाण

**कैवल्य**

**कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति।**[13] अर्थात जब गुणों का (प्रकृति), जो आत्मा के भोग और अपवर्ग के प्रयोजन से (पुरुष) रहित हो जाती है तब मोक्ष (कैवल्य) प्राप्त होता है। अपने मूल कारण में लीन हो जाना या आत्मा का अपने शुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठित होना ही (चितिशक्ति)कैवल्य है। यह योगशास्त्र की पूर्णतः का सूचक है।

**निर्वाण**

**"निब्बानं परमं सुखं"** [14] *अर्थ:* निर्वाण परम सुख है। अर्थात "निर्वाण परम सुख है" या "निर्वाण सबसे बड़ा आनंद है", यही सूत्र बौद्ध धर्म में परम लक्ष्य, दुख और पुनर्जन्म से मुक्ति, और शाश्वत शांति की स्थिति को दर्शाता है, जहाँ समस्त इच्छाएँ और पीड़ा समाप्त हो जाते हैं, और यह आत्मज्ञान व पूर्ण स्वतंत्रता से प्राप्त - होता है।

**तुलनात्मक सारांश**

योगसूत्र और विशुद्धिमग्ग दोनों ही साधना-मार्ग को नैतिक शुद्धि, ध्यान और प्रज्ञा के माध्यम से पूर्ण करते हैं। दार्शनिक मतभेद होते हुए भी व्यावहारिक साधना में गहरा साम्य है।

## निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि योगसूत्र और विशुद्धिमग्ग भारतीय आध्यात्मिक परम्परा की दो सशक्त चिंतन धाराएँ हैं। एक आत्मवादी और दूसरी अनात्मवादी होते हुए भी दोनों मानव-चित्त के शोधन द्वारा दुःख-निवृत्ति का मार्ग प्रशस्त करती हैं। यह तुलनात्मक अध्ययन न केवल दार्शनिक समन्वय को समझने में सहायक है, अपितु आधुनिक योग और ध्यान-अनुसंधान के लिए भी उपयोगी है।

## संदर्भ सूची-


1. पतञ्जलि, *योगसूत्र*, व्यासभाष्य सहित, चौखम्बा, वाराणसी।
2. बुद्धघोषाचार्य, *विशुद्धिमग्ग*, पालि टेक्स्ट सोसाइटी, लंदन।
3. दासगुप्ता, एस.एन., *A History of Indian Philosophy*, खण्ड 1, केम्ब्रिज।
4. राहुल सांकृत्यायन, *दर्शन-दिग्दर्शन*, लोकभारती।
5. वालपोल राहुल, *What the Buddha Taught*, ग्रोव प्रेस।


## फुटनोट

[1] योगसूत्र 1.2

[2] विशुद्धिमग्ग, शीलनिद्देस।

[3] योगसूत्र 1.3

[4] योगसूत्र 2.20

[5] दीघनिकाय, ब्रह्मजालसुत्त।

[6] योगसूत्र 2.12

[7] योगसूत्र 2.29

[8] योगसूत्र 1.17

[9] विशुद्धिमग्ग, समाधिनिद्देस।

[10] योगसूत्र 2.26

[11] धम्मपद, 277।

[12] योगसूत्र 2.3

[13] योगसूत्र 4.34

[14] धम्मपद, 203।